प्रलय की चेतावनी है टूटते हिमखण्ड

प्रमोद भार्गव

हिमखण्डों के टूटने पिघलने और मोटे होने के कारणों में जलवायु परिवर्तन की अहम् भूमिका रेखांकित की जा रही है। हमारी धरती दिन-ब-दिन गरम हो रही है। हम मानें या फिर न मानें शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर गाढ़ लें, यह हकीकत छिपने वाली नहीं है। इसके परिणाम प्राकृतिक संसाधनों पर विपरीत असर के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं। धरती जीव-जगत के अस्तित्व से जुड़ा बड़ा प्रश्न है। पिछली शताब्दी के दौरान पृथ्वी का तापमान 0.60 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। आशंका है कि वर्तमान शताब्दी के अंत तक यह 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। पिछले 200 साल के भीतर हमने प्रगति के बहाने कल-कारखानों के माध्यम से विकास का जंजाल इतना रच दिया है कि पृथ्वी तमतमा गई है। कारखानों और वाहनों से उठता धुंआ वातावरण में छा गया है। इसने पृथ्वी को कंबल के आवरण की तरह ढक लिया है।

गोमुख के विशाल हिमखण्ड का एक हिस्सा टूटकर हाल ही में भागीरथी, यानी गंगा नदी के उद्गम स्थल पर गिरा था। हिमालय के हिमखण्डों का इस तरह से टूटना प्रकृति का अशुभ संकेत है। इन टुकड़ों को गोमुख से 18 किलोमीटर दूर गंगोत्री के भागीरथी के तेज प्रवाह में बहते देखा गया। गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान के वनाधिकारी ने इस हिमखण्ड के टुकड़ों के चित्र लिए और टूटने की पुष्टि की। ग्लेशियर वैज्ञानिक इस घटना की पृष्ठभूमि में कम बर्फबारी होना बता रहे हैं। इस कम बर्फबारी की वजह धरती का बढ़ता तापमान बताया जा रहा है। यदि कालांतर में धरती पर गर्मी इसी तरह बढ़ती रही और ग्लेशियर क्षरण होने के साथ टूटते भी रहे तो इनका असर गंगा नदी के अस्तित्व पर पड़ना तय है, क्योंकि गंगा केवल गोमुख से निकलने वाली जलधारा मात्र नहीं है। गरमाती पृथ्वी की वजह से हिमखण्डों के टूटने का सिलसिला आगे भी जारी रहा तो समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा, जिससे कई लघु द्वीपों और समुद्रतटीय शहर डूबने लग जाएंगे। साफ है, हिमखण्ड का टूटना प्रलय की खतरनाक चेतावनी है। बहरहाल इस संकेत से सचेत होने की जरूरत है।

अब तक हिमखण्डों के पिघलने की जानकारियां तो आती रही हैं, किंतु किसी हिमखण्ड के टूटने की घटना अपवादस्वरूप ही सामने आती है। हालांकि कुछ समय पहले ही आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों की ताजा अध्ययन रिपोर्ट से पता चला था कि ग्लोबल वार्मिंग से बढ़े समुद्र के जलस्तर ने प्रशांत महासागर के पांच द्वीपों को जलमग्न कर दिया है। यह अच्छी बात थी कि इन द्वीपों पर मानव बस्तियां नहीं थी, इसलिए दुनिया को विस्थापन और शरणार्थी समस्या का सामना नहीं

गरमाती पृथ्वी के कारण टूटते हिमखण्ड

करना पड़ा। दुनिया के नक्शे से गायब हुए ये द्वीप थे, केल, रेपिता, कालातिना, झोलिम एवं रेहना। पापुआ न्यू गिनी के पूर्व में यह सालोमन द्वीप समूह का हिस्सा थे। पिछले दो दशकों में इस क्षेत्र में समुद्र के जलस्तर में सालाना 10 मिली की दर से बढ़ोत्तरी हो रही है। ग्रीनलैंड के पिघलते ग्लेशियर समुद्री जलस्तर को कुछ सालों के भीतर ही आधा मीटर तक बढ़ा सकते हैं। साफ है, बदलते पर्यावरण का यह भयावह संकेत बता रहा है कि हमें एक ऐसी दुनिया में जीने की तैयारी कर लेनी चाहिए, जहां सब-कुछ हमारे प्रतिकूल होगा।

गोमुख के द्वारा गंगा के अवतरण का जलस्रोत बने हिमालय पर जो हिमखण्ड हैं, उनका टूटना भारतीय वैज्ञानिक फिलहाल साधारण घटना मानकर चल रहे हैं। उनका मानना है कि कम बर्फबारी होने और ज्यादा गर्मी पड़ने की वजह से हिमखण्डों में दरारें पड़ गई थीं, इनमें बरसाती पानी भर जाने से हिमखण्ड टूटने लग गए। अभी गोमुख हिमखण्ड का बाईं तरफ का एक हिस्सा टूटा है। उत्तराखंड के जंगलों में लगी आग की आंच ने भी हिमखण्डों को कमजोर करने का काम किया है। आंच और धुएं से बर्फीली शिलाओं के ऊपर जमी कच्ची बर्फ तेजी से पिघलती चली गई। इस कारण दरारें भर नहीं पाईं। अब वैज्ञानिक यह आशंका भी जता रहे हैं कि धुएं से बना कॉर्बन यदि शिलाओं पर जमा रहा तो भविष्य में नई बर्फ जमना मुश्किल होगी। हालांकि भोजबासा में तीन वैज्ञानिकों का एक दल पहले से ही इन हिमखण्डों के अध्ययन में लगा है। लेकिन वह यह अनुमान लगाने में नाकाम रहा कि हिमशिलाओं में पड़ी दरारें, इन्हें पृथक भी कर सकती हैं।

हिमालयी हिमखण्ड का टूटना तो नई बात है, लेकिन इनका पिघलना नई बात नहीं है। शताब्दियों से प्राकृतिक रूप में हिमखण्ड पिघलकर नदियों की अवरिल जलधारा बनते रहे हैं। लेकिन भूमण्डलीकरण के बाद प्राकृतिक संपदा के दोहन पर आधारित जो औद्योगिक विकास हुआ है, उससे उत्सर्जित कॉर्बन ने इनके पिघलने की तीव्रता को बढ़ा दिया है। एक शताब्दी पूर्व भी हिमखण्ड पिघलते थे, लेकिन बर्फ गिरने के बाद इनका दायरा निरंतर बढ़ता रहता था। इसीलिए गंगा और यमुना जैसी नदियों का प्रवाह बना रहा। किंतु 1950 के दशक से ही इनका दायरा तीन से चार मीटर प्रति वर्ष घटना शुरू हो गया था। 1990 के बाद यह गति और तेज हो गई इसके बाद से गंगोत्री के हिमखण्ड प्रत्येक वर्ष 5 से 20 मीटर की गति से पिघल रहे हैं। कमोबेश यही स्थिति उत्तराखंड के पांच अन्य हिमखण्ड सतोपंथ, मिलाम, नीति, नंदादेवी और चोराबाड़ी की है। भारतीय हिमालय में कुल 9,975 हिमखण्ड हैं। इनमें 900 उत्तराखण्ड के क्षेत्र में आते हैं। इन हिमखण्डों से भी ज्यादा नदियां निकली हैं, जो देश की 40 प्रतिशत आबादी को पेय, सिंचाई व आजीविका के अनेक संसाधन उपलब्ध कराती हैं। किंतु हिमखण्डों के पिघलने और टूटने का यही सिलसिला बना रहा तो देश के पास ऐसा उपाय नहीं है कि वह इस 50 करोड़ आबादी को रोजगार व आजीविका के वैकल्पिक संसाधन दे सके।

बढ़ते तापमान के चलते आर्कटिक से भी हिमखण्डों के पिघलने और बर्फ के कम होने की खबर आई है। यूएस नेशनल एंड आइस डाटा सेंटर ने उपग्रह के जरिए जो चित्र हासिल किए हैं, उनसे ज्ञात हुआ है कि 1 जून 2016 तक यहां 11.1 मिलियन वर्ग किमी क्षेत्र में बर्फ थी, जबकि पिछले इसी समय तक यहां औसतन 12.7 मिलियन वर्ग किमी क्षेत्र में बर्फ थी। 1.6 मिलियन वर्ग किमी क्षेत्र में यह जो समुद्री बर्फ कम हुई है, यह क्षेत्रफल यूके को 6 मर्तबा जोड़ने के बाद बनने वाले क्षेत्रफल के बराबर है। पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव के आसपास के इलाकों को आर्कटिक कहा जाता है। इस क्षेत्र में आर्कटिक महासागर, कनाडा का कुछ हिस्सा, डेनमार्क की ग्रीनलैंड, रूस का एक हिस्सा, संयुक्त राज्य अमेरिका का अलास्का, आईसलैंड, नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड शामिल हैं। भारत से यह इलाका 9,863 किमी दूर है। रुस के उत्तरी कोस्ट में समुद्री बर्फ लुप्त हो रही है। इस क्षेत्र में समुद्री गर्मी निरंतर बढ़ने से अनुमान लगाया जा रहा है कि कुछ सालों में यह बर्फ भी पूरी तरह खत्म हो जाएगी। कैंब्रिज विवि के पोलन ओशन फिजिक्स समूह के मुख्य प्राध्यापक पीटर वैडहैम्स का दावा है कि आर्कटिक क्षेत्र के केंद्रीय भाग और उत्तरी क्षेत्र में बर्फ अगले साल तक पूरी तरह गायब हो जाएगी। अभी तक आर्कटिक में 900 घन किमी बर्फ पिघल चुकी है। वैज्ञानिक ब्रिटेन और अमेरिका में आ रही बाढ़ों का कारण इसी बर्फ का पिघलना मान रहे हैं। यदि यहां की बर्फ वाकई खत्म हो जाती है तो दुनियाभर में तापमान तेजी से बढ़ जाएगा। मौसम में कई तरह के आकस्मिक बदलाव होंगे। जैसे कि हम उत्तराखंड में बादलों के लगातार फटने और हिमखण्डों के टूटने की घटनाओं के रूप में देख रहे हैं। मौसम में परिवर्तन की यही आकस्मिक घटनाएं प्रलय के खतरनाक संकेत हैं।

तापमान बढ़ेगा तो जमीन में नमी कम होगी और जंगल सूखेंगे। गर्मी ज्यादा बढ़ने से जंगलों में आग लगने की आशंकाएं भी बढ़ जाती हैं। उत्तराखंड, टोरन्टो और कैलीफोर्निया के जंगलों में हर साल आग की घटनाएं सामने आ रही हैं। जंगलों में लगी आग यदि हिम खण्डों के निकट है, तो जाहिर है, हिमखंड पिघलेंगे ही। आग से जो प्रदूषण फैलता है, वह ग्लेशियरों के आकार को छोटा कर देता है। उत्तराखंड में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते तापमान बढ़ा है। धर्म-यात्रा के बहाने यात्रियों की आवाजाही भी बढ़ी है। इन सभी कारणों से हिमखण्ड पिघल रहे हैं।

बढ़ते तापमान को रोकना अकेले भारत के बस की बात नहीं है, बावजूद हम अपने हिमखण्डों को टूटने और पिघलने से बचाने के उपाय औद्योगिक गतिविधियों को विराम देकर एक हद तक रोक सकते हैं। पर्यटन के रूप में मानव समुदायों की जो आवाजाही बढ़ रही है, उस पर भी अंकुश लगाने की जरूरत है। इसके अलावा वाकई हम अपनी बर्फीली शिलाओं को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमारी ज्ञान परंपरा में हिमखण्डों के सुरक्षा के जो उपाय उपलब्ध हैं, उन्हें भी महत्व देना होगा। हिमालय के शिखरों पर रहने वाले लोग आजादी के दो दशक बाद तक बरसात

के समय छोटी-छोटी क्यारियां बनाकर पानी रोक देते थे। तापमान शून्य से नीचे जाने पर यह पानी जमकर बर्फ बन जाता था। इसके बाद इस पानी के ऊपर नमक डालकर जैविक कचरे से इसे ढक देते थे। इस प्रयोग से लंबे समय तक यह बर्फ जमी रहती थी और गर्मियों में इसी बर्फ से पेयजल की आपूर्ति होती थी। इस तकनीक को हम 'वाटर हार्वेस्टिंग' की तरह 'स्नो हार्वेस्टिंग' भी कह सकते हैं। फिलहाल हमारी चिंता गंगा की सफाई को लेकर तो है, लेकिन इस परिप्रेक्ष्य में सोचने की जरूरत है कि गंगा का मतलब केवल गोमुख से गंगा सागर तक बहने वाली जलधारा तक सीमित नहीं है। इससे जुड़े सारे हिमनद, हिमखंड, इनसे निकली नदियां, भूजल एवं अन्य कई जलस्रोत मिलकर जीवनदायी पवित्र गंगा नदी का अस्तित्व निर्माण करते हैं। इनमें एक भी जलस्रोत नष्ट हुआ तो गंगा समेत हिमालय से निकलने वाली अन्य नदियां भी सरस्वती की तरह विलुप्त हो जाएंगी।

वैसे हिमखण्डों के टूटने पिघलने और मोटे होने के कारणों में जलवायु परिवर्तन की अहम् भूमिका रेखांकित की जा रही है। हमारी धरती दिन-ब-दिन गरम हो रही है। हम मानें या फिर न मानें शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर गाढ़ लें, यह हकीकत छिपने वाली नहीं है। इसके परिणाम प्राकृतिक संसाधनों पर विपरीत असर के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं। धरती जीव-जगत के अस्तित्व से जुड़ा बड़ा प्रश्न है। पिछली शताब्दी के दौरान पृथ्वी का तापमान 0.60 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। आशंका है कि वर्तमान शताब्दी के अंत तक यह 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। पिछले 200 साल के भीतर हमने प्रगति के बहाने कल-कारखानों के माध्यम से विकास का जंजाल इतना रच दिया है कि पृथ्वी तमतमा गई है। कारखानों और वाहनों से उठता धुंआ वातावरण में छा गया है। इसने पृथ्वी को कंबल के आवरण की तरह ढक लिया है। आवरण रूपी इन्हीं गैसों को ग्रीन हाउस गैसें कहते हैं। इनमें कार्बनडाइऑक्साइड जैसी कई हानिकारक गैसें हैं। इस कारण पृथ्वी की गर्मी वायुमंडल में अवशोषित नहीं हो पा रही है। इसी वजह से भारतीय हिमालय एवं तिब्बत के ग्लेशियर लगातार पिघल रहे हैं।

तापमान बढ़ेगा तो जमीन में नमी कम होगी और जंगल सूखेंगे। गर्मी ज्यादा बढ़ने से जंगलों में आग लगने की आशंकाएं भी बढ़ जाती हैं। उत्तराखंड, टोरन्टो और कैलीफोर्निया के जंगलों में हर साल आग की घटनाएं सामने आ रही हैं। जंगलों में लगी आग यदि हिम खण्डों के निकट है, तो जाहिर है, हिमखंड पिघलेंगे ही। आग से जो प्रदूषण फैलता है, वह ग्लेशियरों के आकार को छोटा कर देता है। उत्तराखंड में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते तापमान बढ़ा है। धर्म-यात्रा के बहाने यात्रियों की आवाजाही भी बढ़ी है। इन सभी कारणों से हिमखण्ड पिघल रहे हैं। हिमखण्डों का महत्व गर्मियों के दिनों में ज्यादा होता है। इन दिनों नदियों में पानी इन हिमखंडों से पिघकर ही आता है। भारतीय उप महाद्वीप में हिमखंड और हिमनदों का महत्व इसलिए है, क्योंकि यहां सालभर में 8,760 घंटों में से सिर्फ 100 घंटे ही बारिश होती है। जब गर्मी चरम पर होती है और धरती के ज्यादातर जलस्रोत सूखने लग जाते हैं तब हिमखण्ड ही नदियों को पानी उपलब्ध कराते हैं किंतु यदि ये इसी तरह टूटते और पिघलते रहे तो गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियां हमेशा के लिए सूख जाएंगी।

तिब्बत के पठारों में उपलब्ध करीब 90 प्रतिशत हिमखण्ड तेजी से पिघल रहे हैं। तिब्बत को 'थर्ड पोल' क्षेत्र भी कहा जाता है। चीन के एक वैज्ञानिक के मुताबिक ऐसा दक्षिण एशिया से कार्बन प्रदूषकों के तिब्बत पठार पर चले आने के कारण हुआ है। थर्ड पोल 50 लाख वर्ग किलोमीटर से भी ज्यादा क्षेत्र में फैला हुआ है। इसकी औसत ऊंचाई 4000 मीटर से अधिक है। चाइनीज एकेडमी ऑफ साइंसेज इंस्टीट्यूट ऑफ तिब्बत प्लेटो रिसर्च के निदेशक याओ तानडोंग ने कहा है कि अंटार्कटिका और आर्कटिक की तरह ही थर्ड पोल अंतरराष्ट्रीय अध्ययनकर्ताओं का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है, लेकिन इस क्षेत्र में पूर्व में किए गए अध्ययनों के परिणाम में भिन्नता है। इस क्षेत्र में ध्रुवीय क्षेत्र से बाहर इससे अधिक हिमखंड हैं। यह चीन और भारत जैसी घनी आबादी वाले देशों के सामाजिक और आर्थिक विकास पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। दरअसल ये हिमखण्ड एशिया की कई प्रमुख नदियों के उद्गम स्थल हैं। बढ़ते तापमान से उच्च पर्वतीय हिमखण्डों में व्यापक बदलाव हाल के वर्षों में देखने में आए हैं। इनके पिघलने का सिलसिला तो जारी है ही, इससे पठार और इसके चारों और रहने वाले लोगों के लिए भूगर्भीय खतरे की आशंका भी उत्पन्न हो गई है। तीस वर्षों से अधिक समय से जारी शोध में वैज्ञानिकों ने तिब्बत पठार पर प्रदूषण के प्रभाव को नए ढंग से समझा है।

इन सब के बावजूद हिमखण्डों के परिप्रेक्ष्य में विरोधाभासी अध्ययन भी

हिमखण्डों के पिघलने से समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है, फलस्वरूप तटवर्ती इलाकों के जलमग्न होने की आशंका बढ़ गई है

हिमखण्डों के निकट जंगलों में आग लगने से ग्लेशियरों का आकार छोटा हो रहा है

वातावरण में ओजोन गैस की अधिकता के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है

सामने आए हैं। प्रचलित धारणाओं के विरुद्ध एशिया के कुछ हिमखण्ड मोटे हो रहे हैं। यह स्थिति कराकोरम की पहाड़ियों के हिमखण्डों में देखने में आई है। फ्रांस के वैज्ञानिकों ने उपग्रह के जरिए जो चित्र व जानकारियां इकट्ठी की हैं, उनसे सुखद संकेत मिले हैं। फ्रांस के नेशनल सेंटर फॉर साइंटिफिक रिसर्च तथा ग्रेनोबल विवि के वैज्ञानिकों ने कराकोरम पहाड़ियों की सतह के उभार के 10 साल के अंतराल में लिए गए चित्रों का जब तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि पहले की तुलना में आज ये हिमखण्ड ज्यादा मोटे हो गए हैं। जबकि अभी तक हम यही सुनते आए हैं कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और हिमखण्ड पिघल रहे हैं अर्थात पतले हो रहे हैं। हिमखण्डों के पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। फलस्वरूप धरती के तटवर्ती इलाकों के जलमग्न हो जाने की आशंकाएं भी जताई जाती रही हैं। इस डूब में मालद्वीप और बांग्लादेश के आने की आशंका भी प्रकट की गई है। क्योंकि इनकी सतह अन्य देशों की तुलना में बहुत नीचे है।

इस विपरीत शोध के सामने आने से वैज्ञानिकों के अनुसंधानों पर भरोसा करना शंका के दायरे में आ गया है। दरअसल जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में 2007 में अंतर सरकारी पैनल ने तो यहां तक कह दिया था कि हिमालय के कई इलाकों में 2035 तक बर्फ पूरी तरह विलुप्त हो जाएगी। बाद में इस भ्रामक दावे के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकों को माफी तक मांगनी पड़ी थी। हकीकत तो यह है कि हिमखण्डों और हिमनदों पर वैज्ञानिक शोध-अध्ययन कम ही हुए हैं। बावजूद यह सच है कि औद्योगिक क्रांति के बाद से अब तक वातावरण में कार्बन उत्सर्जन बेतहाशा बढ़ा है। इसके कारण कनाडा के पास एल्समीयर द्वीप पर 21वीं सदी के शुरू होने से पहले तक 9000 वर्ग किमी क्षेत्र में बर्फ फैली थी, जो सिमटकर वर्तमान में मात्र 1000 किमी क्षेत्र में रह गई है। इन सब कारणों के चलते वैज्ञानिक अनुभव करने लगे हैं कि हम आधुनिक विकास के जिस रास्ते पर चल रहे हैं, वह हमारे विनाश का कारण भी बन सकता है। आज हमारे पास सांस लेने के लिए न शुद्ध हवा है और न ही निर्मल पेयजल है। आने वाले समय में जलवायु परिवर्तन से जूझते हुए कम कार्बन पैदा करने वाली अर्थव्यवस्था को खड़ा करने में वैश्विक जीडीपी का मात्र आधा फीसदी ही खर्चा होगा। 20 विकासशील देशों की ओर से कराए एक अध्ययन के मुताबिक 2030 की बेहद भयावह तस्वीर खींची गई हैं। विकासशील देशों की इस रिपोर्ट में 2010 और 2030 में 184 देशों पर जलवायु परिवर्तन के आर्थिक असर का आकलन किया गया है। भारत समेत पूरी दुनिया का तापमान यदि 6 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ गया तो ग्लोबल वार्मिंग के कारण भारत की मानसून प्रणाली बहुत कमजोर पड़ जाएगी। बारिश और जल की कमी होगी समान्य बारिश की तुलना में 40 से 70 प्रतिशत तक ही बारिश होगी। दुनिया में 10 करोड़ लोग सिर्फ गरमाती धरती की वजह से मौत के मुंह में समा जाएंगे। वायु प्रदूषण, भूख और बीमारी से हर साल 60,00000 लोगों की मौत होगी। 9 करोड़ लोग परिवर्तित जलवायु की गिरफ्त में आकर प्राण गंवा देंगे।

ओजोन गैस से समय पूर्व होने वाली मौत का आंकड़ा भारत में सालाना 20 फीसदी की दर से बढ़ रहा है। इस गैस के प्रभाव से मानव के फेफड़ों पर भी खासा प्रभाव पड़ रहा है। लोग अस्थमा एवं श्वास रोग से ही नहीं, मधुमेह, मस्तिष्क संबंधी रोग व लकवा जैसी विकलांगता का भी शिकार हो रहे हैं। यह खुलासा अमेरिका के 'इंस्टीट्यूट फॉर हेल्थ मेट्रिक्स एंड इवेल्यूशन' की रिपोर्ट से हुआ है। रिपोर्ट में अमेरिका के साथ-साथ विश्व के 10 प्रमुख देशों के वायु प्रदूषण पर 1990 से 2015 तक की स्थिति का आकलन किया गया है। रिपोर्ट बताती है कि पिछले 25 वर्षों में भारत में ओजोन से होने वाली मौतों की संख्या में 148 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई है। 1990 के बाद भारत में ओजोन से जहाँ सालाना औसतन 20 फीसदी मौतें बढ़ रही हैं, वहीं चीन में यह दर मात्र 0.50 फीसदी है। भारत में ओजोन से होने वाली असामयिक मौतें बांग्लादेश से 13 गुना और पाकिस्तान से 21 गुना ज्यादा हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2015 में ओजोन गैस के प्रभाव से विश्वभर में 2.54 लाख मौतें हुईं। इनमें से 1.07 लाख मौत अकेले भारत में हुई हैं। रिपोर्ट बताती है कि दुनिया में असायमिक मौतों के पीछे वायु प्रदूषण पांचवां बड़ा कारण बनता जा रहा है, जबकि 33वां कारण ओजोन का प्रभाव है। दरअसल विश्व की 92 प्रतिशत आबादी जहां रहती है, वहां स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्धक हवा व पानी उपलब्ध नहीं हैं। इस भयावह त्रासदी का 90 प्रतिशत संकट विकासशील देशों के गरीब लोगों को झेलना होगा। बहरहाल हिमखण्ड के टूटने से प्रलय का जो संकेत मिला है, उसे गंभीरता से लेने की जरूरत है।

आलेख के आधार स्रोत

1. हमारा पर्यावरण, लेखक-अनुपम मिश्र, दैनिक भास्कर, 22 मई, 2011 एवं 2 फरवरी 2014, पत्रिका, दिनांक 15 जून, 2014 एवं 27 फरवरी, 2017, रविवारी जनसत्त, 31 मई, 2015, स्रोत (मासिक) जून 2016।

संपर्क करें:
प्रमोद भार्गव
शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी म.प्र.
मो.न. 09425488224
ईमेल : pramod.bhargava15@gmail.com